Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 07-09-2025, Accepted: 08-10-2025, Published: 23-10-2025
Volume 6, Issue 2, 2025, Page No. 19-21

खड़ी बोली साहित्य का इतिहास दर्शन

डॉ० अनिरुद्ध कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पी० जी० डी०ए ० वी० कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
इतिहास किसी राष्ट्र का लिखा जाय या भाषा–साहित्य का उसमें एक सुचिंतित इतिहास दृष्टि अवश्य होती है। हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने के पीछे भी विधेयवादी और मार्क्सवादी दृष्टि की छाप दिखाई पड़ती है। खड़ी बोली का इतिहास अनिवार्य रूप से हिंदी साहित्य में शामिल रहा है। ऐसे में हिंदी साहित्य का इतिहास की इतिहास दृष्टि से सबक लेकर खड़ी बोली का इतिहास दर्शन निश्चित करना सर्वथा उपयुक्त है। यह इतिहास दर्शन विधेयवाद, मार्क्सवाद या संरचनावाद के इतिहास दर्शन के आधार पर लिखे जाने के बजाय सभी की विशेषताएं अपनाकर तथा अतिवादों से बचते हुए लिखा जाना चाहिए।

मूल शब्दः इतिहास–दर्षन, विधेयवाद, मार्क्सवाद, संरचनावाद, तेन, युग चेतना, लोक, शास्त्र

मूल आलेख

इतिहास लिखने से पूर्व इतिहासकार इतिहास लिखने के कुछ मूलभूत सिद्धांत स्थिर करता है जो उसके इतिहास को आद्यंत नियमित और व्यवस्थित करता चलता है। ये सिद्धांत इतिहासकार की दृष्टि के परिचायक होते हैं जिनके सहारे वह इतिहास को देख रहा होता है। मसलन आचार्य शुक्ल जब साहित्य को वहां की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब मानकर आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य परंपरा के साथ उसका सामंजस्य दिखाने को ही साहित्य का इतिहास कहते हैं और चित्तवृत्तियों में हुये परिवर्तन के कारण स्वरूप राजनितिक, सामाजिक, सांप्रदायिक, तथा धार्मिक परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन आवश्यक मानते हैं, तब वास्तव में वे अपने इतिहास दर्शन को ही स्पष्ट कर रहे होते हैं। हिंदी साहित्य के दूसरे महत्वपूर्ण इतिहासकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी अपनी इतिहास संबंधी दृष्टि स्पष्ट करते हुये लिखा है– "मैं इसी रास्ते सोचने का प्रस्ताव करता हूँ। मतों, आचार्यों, संप्रदायों और दार्शनिक चिंताओं के मान–दंड से लोक–चिंता को नहीं मापना चाहता, बल्कि लोक–चिंता की अपेक्षा में उन्हें देखने की सिफारिश कर रहा हूँ।"

सुमन राजे ने हिंदी साहित्य लिखने की प्रचलित दृष्टि पर सवाल उठाया कि– "अभी तक हम साहित्य इतिहास में, खास तौर पर हिंदी साहित्य इतिहास में यही कहते सुनते चले आये हैं कि साहित्यिक–सामाजिक परिस्थितियों के साथ साहित्य बदलता है और कार्य कारण की खोज ही साहित्य का इतिहास है तो यह प्रभाव एक काल की सभी भाषाओं पर क्यों नहीं है और पुरुष साहित्य और स्त्री साहित्य पर समरूप से प्रतिबिम्बित क्यों नहीं होता?" प्रचलित दृष्टि से टकराकर एक नयी दृष्टि विकसित करने की जरूरत स्पष्ट करते हुये वे लिखती हैं– "अंततः बात तो दृष्टि की ही है न। दृष्टि के बदल जाने से ही साहित्य इतिहास का यत्न से बनाया गया पूरा ढांचा चरमराने लगता है। पर हम बजाय दृष्टि को विकसित करने के अतिरिक्त संदर्भों, सूत्रों और वृतांतों को काटने–छांटने लगते हैं या इधर–उधर खोंसने लगते हैं। अब वक्त आ गया है कि हम अपनी परंपरायें शुद्ध कर लें।" अपनी दृष्टि स्पष्ट करते हुये वे लिखती हैं– "जो कुछ भी महिला लेखन हम आज उपलब्ध कर सकें हैं वह या तो धर्माश्रय के माध्यम से है या राज्याश्रय के माध्यम से। तीसरा और सबसे सशक्त स्रोत है लोकाश्रय। ये तीन आश्रय मात्र नहीं हैं तीन वर्गों के प्रतीक हैं। इसलिये यदि स्त्री साहित्य का इतिहास लिखना है तो बिना लोक साहित्य का आश्रय लिये लिखा जा ही नहीं सकता। इसलिये पहली बार केवल लिखे अक्षर को प्रामाणिक मानने की परंपरा को तोड़कर लोक साहित्य की सहायता से इतिहास रचने की कोशिश या दुस्साहस यहां किया गया है।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल से सुमन राजे तक की इतिहास दृष्टि से परिचित होना इस सवाल को तय करने के लिये जरूरी है कि खड़ी बोली साहित्य का इतिहास किस दर्शन की सहायता से लिखा जाय? क्योंकि खड़ी बोली साहित्य का इतिहास एक अंग के रूप में हिंदी साहित्य के इतिहास में शामिल रहा है। इतिहास दृष्टि के संबंध में यह ध्यान रखना जरूरी है कि इतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियां या तो किसी दर्शन से विकसित होती हैं या किसी दर्शन के विकास में अपनी भूमिका निभाती हैं। लिखे गये इतिहास से गुजरकर ही इतिहास दर्शन के सिद्धांत निकाले जाते हैं जिनकी व्यवहारिक निष्पत्ति पुनः इतिहास लिखे जाने में ही होती है। यह प्रक्रिया कार्य–कारण की तरह पूर्वापर ही नहीं घटित होती है बल्कि साथ–साथ एक–दूसरे को प्रभावित करती हुई भी चलती है। इस तरह इतिहास, इतिहास दृष्टि और इतिहास दर्शन के बीच अनिवार्य रिश्ता होता है।

प्रमुख इतिहास दर्शनों– विधेयवाद, मार्क्सवाद और संरचनावाद में से खड़ी बोली साहित्य का इतिहास लिखने में अब तक सर्वाधिक उपयोग विधेयवाद का ही होता रहा है। यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि खड़ी बोली साहित्य का इतिहास हिंदी साहित्य के इतिहास के रूप में ही लिखा जाता रहा है। वास्तव में बीसवीं सदी का हिंदी साहित्य का इतिहास केवल खड़ी बोली साहित्य का इतिहास है। रामचंद्र शुक्ल से लेकर सुमन राजे तक के हिंदी साहित्य के इतिहास में खड़ी बोली साहित्य का इतिहास इसी रूप में शामिल है जिनपर विधेयवाद का असर स्पष्ट देखा जा सकता है। विधेयवाद इतिहास लेखन में वैज्ञानिक तटस्थता और तथ्य की सर्वोच्च महत्ता को स्थापित करता है। वह सभी तरह के तथ्यों को सामने रखने पर जोर देता है। वह इनमें से कुछ सामान्य और सार्वभौम नियम निकालने को भी इतिहासकार का दायित्व मानता है। जाहिर है कि खड़ी बोली साहित्य के इतिहास के स्वरूप को भी वैज्ञानिक पद्धति से अर्थात तथ्य और तर्क के सहारे निर्मित किया जाना चाहिये। तथ्य और तर्क को प्रस्तुत करने में तटस्थता बनाये रखना भी जरूरी है अन्यथा इतिहास ग्रंथ से खड़ी बोली साहित्य के इतिहास के बजाय केवल इतिहासकार की दृष्टि का पता चलेगा। कहना न होगा कि खड़ी बोली साहित्य के इतिहास में एक हद तक इसका व्यावहारिक उपयोग हुआ भी है। विधेयवाद के प्रवर्तक माने जाने वाले अगस्त कामटे तथ्यों से सामान्य नियम निकालने को आवश्यक बताते हुये लिखते हैं कि इतिहासकार को इतिहास की छोटी–छोटी घटनाओं से एक बड़े सत्य तक पहुंचना चाहिये। ठीक वैसे ही जैसे एक

वैज्ञानिक कुछ प्रयोगों के सहारे एक बड़े सत्य की खोज करता है, किसी सार्वभौम नियम का प्रतिपादन करता है। खड़ी बोली साहित्य का इतिहास लिखने के लिये भी यह उपयुक्त पद्धति है। खड़ी बोली साहित्य के इतिहासकार को भी तथ्यों से किसी सामान्य नियम की ओर बढ़ना चाहिये। मसलन तथ्य से क्रमशः युगीन प्रवृत्ति की ओर, सार्वकालिक मानविये प्रवृत्ति की ओर, चेतना की निर्मिति की ओर आदि। यह विधेयवादी पद्धति तेन के यहाँ यू–चेतना के सिद्धांत के रूप में मिलती है। तेन लिखते हैं कि– "एक युग में कुछ प्रधान विचार होते हैं, उनका एक बौद्धिक सांचा होता है जो पूरे समाज के चिंतन को प्रभावित करता है। हर युग में मनुष्य की एक परिकल्पना या अवधारणा होती है। मनुष्य की यह परिकल्पना आदर्श का रूप धारण कर लेती है, जैसे कि मध्यकालीन यूरोप में वीर और पुजारी तथा आधुनिक काल में दरबारी और वाक् पटु। युग के प्रधान विचार का प्रसार जीवन के सभी क्षेत्रों में होता है, व्यवहार में और चिंतन में। एक लंबे समय के बाद ऐसे विचार का धीरे–धीरे ह्रास होता है और कोई नया विचार विकसित होकर प्रधान विचार बन जाता है। यह दूसरा विचार पहले से जुड़ा होता है साथ ही वह राष्ट्रीय प्रतिभा और समकालीन परिवेश से जुड़कर नये प्रकार के चिंतन और सृजन को प्रेरणा देता है।"

विधेयवाद में हर कार्य के पिछे एक निश्चित कारण की कल्पना करते हुये उसके अन्वेषण का प्रयत्न किया जाता है। खड़ी बोली के साहित्य का इतिहास लिखने में अनेक प्रशनों का समाधान कार्य कारण संबंध की तलाश के जरिये ही किया जा सकता है।

खडी बोली के साहित्य का इतिहास लिखने के लिये बिल्कुल उपयुक्त लगने वाली यह विधेयवादी पद्धति अपूर्ण हो उठती है जब हमारा ध्यान उसकी सीमाओं की ओर जाता है। विधेयवाद के पहले व्याख्याकार रिनके द्वारा इतिहास को इतिहास की तरह देखने और उसकी व्याख्या से बचने की सलाह हो या उसके प्रवर्तक माने जाने वाले कामटे द्वारा इतिहासकार को अपना पेशा चुनने से पहले अपनी विचारधारा, अपनी पसंदगी–नापसंदगी कपड़े की तरह उतारकर अलग रख देने की सलाह। मूल्य निरपेक्षता विधेयवाद को मूल्यहीनता की ओर ले जाता है। विधेयवाद की सीमाएं स्पष्ट करते हुए डा. मैनेजर पाण्डेय ठीक ही लिखते हैं– "विधेयवादी वैज्ञानिकता के नाम पर प्रकृतिक विज्ञानो की प्रणाली को साहित्य के इतिहास लेखन में लागू करते रहे हैं। वैज्ञानिकता के बहाने वे विचारधारात्मक संघर्ष में तटस्थता और पक्षधरता विरोधी रवैया अपनाते हैं। तथ्यपरता से बंधे होने के कारण वे मूल्यों की उपेक्षा करते हैं। साहित्य के इतिहास लेखन को पुरातात्विक विवेचन बनाकर विकृत इतिहास प्रस्तुत करते हैं।" इ.एच.कार भी मानते हैं कि इतिहास तथ्यों का संग्रह मात्र नहीं है। इतिहासकार सभी तथ्यों को बराबर महत्व नहीं देता है बल्कि वह अपनी दृष्टि के अनुकूल तथ्यों का चुनाव करता है। वे यह भी मानते हैं कि इतिहासकार इतिहास की पुनर्रचना भी करता है। विधेयवादि पद्धति की मूल्यनिरपेक्ष दृष्टि की मांग पर यह सही सवाल उठाया जाता है कि क्या व्यवहारिक रूप से मूल्यनिरपेक्ष होना संभव है?

इतिहास लिखने का दूसरा प्रमुख दर्शन मार्क्सवाद है जो इतिहास को एक खास तरह से देखने की कोशिश करता है। यह किसी वस्तु की सही समझ के लिये उसके निर्माण या विकास क्रम के ऐतिहासिक विवेचन में प्रवृत्त होता है। मार्क्सवादी विकास यात्रा को द्वंदात्मकता का परिणाम मानते हैं। मार्क्स कला, साहित्य सहित तमाम चीजों को उत्पादन के रूप में देखते थे। उनके अनुसार उत्पादन की पद्धति में परिवर्तन से आधार और अधिरचना दोनो में परिवर्तन आ जाता है। यही कारण है कि मार्क्सवादी इतिहास में सामाजिक परिवर्तन को उत्पादन की पद्धति में बदलाव से जोड़कर देखने की कोशिश की जाती है। इसीलिये मार्क्सवादी समाज को उसकी आर्थिक स्थिति के सहारे समझने की कोशिश करते हैं। उनके अनुसार सारे संबंध और व्यापार के मूल में अर्थ होता है। मार्क्सवाद मानता है कि साहित्य सोद्देश्य होता है। इससे आगे बढ़कर वह यह भी मानता है कि साहित्य को अवश्य ही सोद्देश्य होना चाहिये। वह कला और साहित्य के अंतर्वस्तु और रूप को विचारधारा से युक्त मानता है और समाज की वर्गीय स्थिति के संदर्भ में उसका मूल्य तय करता है। मूल्य सापेक्षता और सवाल को समाज की आर्थिक, स्थिति से जोड़कर देखना मार्कसवादी दर्शन की सबसे खास विशेषता है।

खड़ी बोली साहित्य का इतिहास लिखने में आने वाली अनेक समस्याएँ मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सहजता से सुलझायी जा सकती है। साथ ही साहित्य और समाज की स्थिति और रिश्तों की बेहतर समझ में भी यह सहायक हो सकता है। साहित्य के विकास और समाज के विकास के पारस्परिक सम्बंध को समाज की आर्थिक स्थिति के साथ जोड़कर देखने से बेहतर निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है। खड़ी बोली ने कितनी शक्ति लोक से अर्जित की और कितनी सत्ता के सहारे ? जनता के बीच की खड़ी बोली दरबारों में आकर कितनी बदल गयी, और तब खड़ी बोली के लिखित साहित्य और लोक साहित्य में कथ्य, शिल्प और भाषा के स्तर पर कितना फर्क आया ? दरबारोन्मुख साहित्य की धारा जनोन्मुख क्यों हो गयी ? महाकाव्य ओर मुक्तकों के बजाय पत्रिकाओं में रोचक–रोमांचक तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास या फिर हंसमुख गद्य क्यों छपने लगा ? उर्दू साहित्य में ऊँचा मकाम हासिल कर चुके प्रेमचंद हिंदी में क्यों लिखने लगे ? क्या इन सबके पीछे कतिपय आर्थिक कारक सक्रिय नहीं थे ?

साहित्य के इतिहास को भाषा और समाज की हलचलों से असंबद्ध नहीं रखा जा सकता है। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के भाषायी आंदोलनों से जुड़े सवालों को भी मार्क्सवादी दृष्टि से देखना चाहिये। मसलन उर्दू और ब्रजभाषा के खिलाफ उभरने वाले खड़ी बोली के साहित्यिक और राजनीतिक आंदोलन के पीछे साम्राज्यवादी ताकतों की राजनीतिक साजिश और उसके खिलाफ उभरने वाला धार्मिक–सांस्कृतिक जागरण ही था अथवा उसके मूल में ठोस आर्थिक कारण थे ? हिंदी जो वास्तव में खड़ी बोली रह गयी थी, को राष्ट्रभाषा बनाने और उसे राष्ट्रभाषा बनाये जाने का विरोध करने के मूल में भी क्या कुछ इसीतरह के ठोस आर्थिक कारण नहीं थे ? ऐसे कितने ही सवालों के समाधान के लिये खड़ी बोली साहित्य का इतिहास लिखने में मार्क्सवादी पद्धति का उपयोग करना अनिवार्य है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद खड़ी बोली जो तब तक हिंदी का पर्याय बन चुकी थी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के संघर्ष की राजनीति के ठोस आधार को समझने के लिये और अर्थव्यवस्थाओं के उदारीकरण के साथ बाजार में तब्दील होते समाज की बदलती हुयी भाषा को समझने के लिये भी यही पद्धति उपयुक्त होगी।

अर्थ को केंद्र में रखकर समाज के स्वरूप और विकास को समझने की मार्क्सवादी पद्धति की सार्थक कोशिश अतिवाद का शिकार होकर निरर्थक होने लगती है। साहित्य और भाषा से जुड़े अनेक सवाल ऐसे होते हैं जिसको समझने के लिये आर्थिक स्थितियों पर निर्भर करना काफी नहीं होता है। मसलन छायावादी और अकविता, अकहानी आदि साहित्य के उदय को केवल मार्क्सवादी दर्शन के सहारे समझना खतरनाक हो सकता है। नामवर सिंह द्वारा 'कविता के नये प्रतिमान' में अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' की व्याख्या, तथा शमशेर की प्रतिनिधि कविताओं के संकलन की भूमिका में शमशेर को मार्क्सवादी सिद्ध करने की कोशिश आदि इस अतिवाद के खतरे को स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त हैं। निर्मल वर्मा जैसे साहित्यकार का मूल्यांकन भी इसी अतिवाद का शिकार हुआ है। दलित, स्त्री और उपेक्षित वर्ग के विमर्श को भी केवल आर्थिक आधार पर देखना काफी नहीं है।

भाषा का स्वरूप और उससे अर्थ ग्रहण की दार्शनिक समस्या के समाधान की सस्यूर की कोशिशों के आधार पर विकसित हुआ संरचनावाद इतिहास लिखने का भी एक नया दर्शन लेकर आया। इसमें वस्तुओं के कार्य करने की प्रणाली को समझने पर जोर है। इस पद्धति की सबसे उल्लेखनीय बात थी छोटे से छोटे वस्तुओं का भी तंत्र के अंग के रूप में महत्वपूर्ण हो जाना। इससे इतिहास में केंद्र और हाशिये की समस्या नहीं रह जाती है। साथ ही किसी को अधिक महत्वपूर्ण और किसी को कम महत्वपूर्ण या महत्वहीन घोषित कर इतिहास के परिदृश्य को विकृत करने की गुंजाइश भी नहीं रह जाती है। मगर मुश्किल यह है कि इस दर्शन के आधार पर और इसकी प्रविधि से हिंदी में लिखा गया कोई इतिहास नहीं मिलता है। संरचनावादी दर्शन के व्यवहारिक रूप के अभाव में उसके सैद्धांतिक पक्ष की व्यवहारिक संभावनाओं पर ही विचार हो सकता है। संरचनावादी दर्शन से इतिहास लिखने की सबसे बड़ी समस्या यह है कि उसमें तमाम चीजों को समान भाव से तंत्र के अंग के रूप में देखते हुये उसकी भूमिका समझनी होती है। इतिहास के सभी पक्ष प्रकट नहीं होते। ऐसे में इतिहासकार तस्वीर के खाली हिस्सों में अपनी कल्पना से रंग भरता है। इस प्रक्रिया में वह विचारधारा से मुक्त होकर रंगों का चुनाव कर ही नहीं सकता। और तब तंत्र के कार्य करने को सही ढंग से देख पाना संभव नहीं रह जाता।

इतिहास दर्शन के चुनाव का सवाल सहजता से सुलझाये जा सकने वाले सवालों में से नहीं है। मगर इसे सुलझाये बिना इतिहास लिखा भी नहीं जा सकता है। यदि तमाम सवालों से जूझते हुये इतिहासकार किसी दर्शन का चुनाव कर ले तो भी उस पर उठाया गया हर सवाल उसके दर्शन के अपूर्ण और अपर्याप्त होने का प्रमाण देने से नहीं चूकता। ऐसे में विरोध और विवाद की संभावना के बावजूद उपलब्ध दर्शनों में से सबसे बेहतर का चुनाव अथवा किसी नये दर्शन का विकास करना इतिहासकार की जरूरत बन जाती है। इसके लिये इतिहासकार निकटवर्ती और सुविधाजनक विषय पर लिखे गये इतिहास की ओर नजर दौड़ाता है। खड़ी बोली साहित्य का इतिहास लिखने में अपनाये जा सकने वाले दर्शन के निर्धारण का भी यही रास्ता हो सकता है। अर्थात हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने के पूर्ववर्ती प्रयासों में व्यवहृत दर्शन का तथा भारतीय और अन्य देशों में इतिहास लिखने में अपनाये जा रहे दर्शन का आलोचनात्मक परिक्षण करते हुये ही खड़ी बोली साहित्य का इतिहास लिखने के लिये उपयुक्त दर्शन का निश्चय किया जा सकता है।

इतिहास दर्शन निश्चित करते समय इतिहासकार को अपने आलोचनात्मक विवेक का इस्तेमाल करने का अधिकार हमेशा अपने पास रखना चाहिये। क्योंकि सुमन राजे के शब्दों के सहारे कहें तो "इतिहास को यदि छू लिया जाय तो फिर वह कंधों पर सवार हो जाता है। फिर जिधर वह ले जाता है हम जाते हैं।" अर्थात इतिहास दर्शन की निश्चित की हुयी सीमाओं के बाहर जाने की भी मांग कर सकता है। ऐसा समय इतिहासकार की परीक्षा का होता है।

निष्कर्षतः इन तमाम स्थितियों को ध्यान में रखकर खड़ी बोली साहित्य के इतिहास को मार्क्सवादी पद्धति के अनुसार लिखा जाना चाहिए। साथ ही उसमें विधेयवाद के सभी तथ्य को समान महत्व देकर तटस्थ भाव से सामने रखने तथा संरचनावाद के चीजों को तंत्र के अंग के रूप में रखकर उसके कार्य करने की प्रक्रिया को समझने के सिद्धांत को भी अपनाया जाना चाहिए। तेन के युग चेतना के सिद्धांत के अनुसार युग की संवेदना को समझते हुए उसे समाज के विभिन्न वर्गों की आर्थिक स्थितियों तथा उस स्थिति के कारण उत्पन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थितियों के आलोक में समझने की कोशिश की जानी चाहिए। साहित्यकार और रचना के वैशिष्ट्य को उसके समय और समाज के आलोक में परखते हुये श्रमजीवी वर्ग के हितों के आधार पर मूल्यांकन की जानी चाहिए। जाहिर है कि इस पद्धति में साहित्य और सत्ता, रचनाकार और बाजार, साहित्यकार का आत्मबोध और सामाजिक–सांस्कृतिक दायित्व तथा इन सबमें साहित्य की स्थिति आदि स्वतः विचार के दायरे में होंगे। इस तरह मार्क्सवाद की सीमाओं को समझकर उससे बचते हुये उसकी विशेषताओं को विधेयवाद और संरचनावाद की खासियतों के साथ अपनाते हुये लिखा गया खड़ी बोली साहित्य का इतिहास एक नये दर्शन से युक्त होकर सार्थक दिशा में अग्रसर होगा।

संदर्भ सूची

1. रामचंद्र शुक्ल– हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, 1941, पृ.1
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी– हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015, पृ.20
3. सुमन राजे– हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2015, पृ.10
4. वही, पृ.१०
5. टी. एम. डक– सामाजिक चिंतन ख्भाग–2,, हरियाणा साहित्य अकादमी, विधेयवाद से
6. डॉ. मैनेजर पाण्डेय– साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकुला, 2014, पृ.125–126
7. मैनेजर पाण्डेय– साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2005 से
8. सुमन राजे– हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2015, पृ.9